डा.राजीव कुमार,
इतिहास विभाग,
एच.डी.जैन कॉलेज, आरा.

प्रश्न: पश्चिमी भारत में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उभरे दलित आंदोलन की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण कीजिए।
क्या यह आंदोलन मुख्यतः ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध थे या औपनिवेशिक संरचना के अंतर्विरोधों का परिणाम थे ?
Analyse the Socio - Economic
background of the Dalit Movement that emerged in the latter half of the 19th Century in Western India.
Were these movements primarily against Brahminical dominance or were they the result of the contradictions within the colonial structure ?

प्रस्तावना :

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पश्चिमी भारत—विशेषकर महाराष्ट्र, बॉम्बे प्रेसीडेंसी के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र—में दलित चेतना का संगठित रूप दिखाई देने लगा। यह काल सामाजिक पुनर्जागरण, औपनिवेशिक आधुनिकीकरण तथा जाति-आधारित सामाजिक संरचना में तीव्र अंतर्विरोधों का काल था। इसी पृष्ठभूमि में सत्यशोधक समाज (1873) जैसे संगठनों का उदय हुआ और आगे चलकर 20वीं शताब्दी में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में दलित आंदोलन ने वैचारिक और राजनीतिक स्वरूप ग्रहण किया।
यह आंदोलन केवल सामाजिक सुधार तक सीमित नहीं था, बल्कि सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान और समानता की व्यापक मांग का प्रतीक था।

1. सामाजिक पृष्ठभूमि :

(क) जाति-आधारित सामाजिक संरचना :
पश्चिमी भारत में वर्ण और जाति व्यवस्था अत्यंत कठोर थी। 'अस्पृश्य' मानी जाने वाली जातियाँ—जैसे महार, मांग, चांभार आदि—सामाजिक बहिष्कार, धार्मिक निषेध और सार्वजनिक स्थलों से वंचना का सामना करती थीं।
मंदिर प्रवेश निषिद्ध,
कुओं और तालाबों से जल लेने पर रोक,
शिक्षा से वंचना,
सामाजिक बहिष्कार की प्रथा,
ब्राह्मणवादी वर्चस्व ने धार्मिक ग्रंथों और कर्मकांडों के माध्यम से इस असमानता को वैधता प्रदान की।

(ख) सामाजिक सुधार आंदोलनों का प्रभाव :
19वीं शताब्दी में पश्चिमी भारत में सुधार आंदोलनों का उदय हुआ।
प्रार्थना समाज,
आर्य समाज,
इन आंदोलनों ने अस्पृश्यता और जातिगत ऊँच-नीच की आलोचना की, परंतु उनका दृष्टिकोण प्रायः सुधारवादी था, क्रांतिकारी नहीं।

(ग) ज्योतिराव फुले का योगदान :
ज्योतिराव फुले ने ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना की मूलभूत आलोचना की।
शूद्र-अतिशूद्र एकता का विचार,

शिक्षा को मुक्ति का साधन माना,
स्त्री शिक्षा और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन,
फुले का आंदोलन ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध एक वैचारिक संघर्ष था।

2. आर्थिक पृष्ठभूमि :

(क) औपनिवेशिक भूमि व्यवस्था :
ब्रिटिश शासन में राजस्व नीतियों और नकदी फसलों की प्रवृत्ति ने ग्रामीण समाज में आर्थिक विषमता बढ़ाई।
कृषक समुदाय कर्जग्रस्त हुए,
साहूकार वर्ग का उदय हुआ,
निम्न जातियाँ भूमिहीन मजदूर बन गईं,
दलित समुदाय पारंपरिक सेवाओं (वतनदारी प्रथा) से बंधा हुआ था। औपनिवेशिक परिवर्तन ने इन पारंपरिक संबंधों को तोड़ा, परंतु नई आर्थिक संरचना में उन्हें समान अवसर नहीं मिला।

(ख) नगरीकरण और औद्योगीकरण :
मुंबई जैसे नगरों में कपड़ा मिलों का विकास हुआ।
मजदूर वर्ग का निर्माण,
ग्रामीण दलितों का शहरों की ओर पलायन,
सामूहिक संगठन की संभावना,
नगरीय वातावरण ने सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाया और जातिगत बंधनों को आंशिक रूप से शिथिल किया।

(ग) शिक्षा और नौकरियाँ :
अंग्रेज़ी शिक्षा और मिशनरी विद्यालयों ने निम्न जातियों के लिए सीमित अवसर खोले। इससे एक शिक्षित दलित मध्यवर्ग उभरा, जिसने सामाजिक असमानता के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष को जन्म दिया।

3. औपनिवेशिक संरचना और उसके अंतर्विरोध :

(क) समानता का सिद्धांत बनाम सामाजिक यथार्थ
ब्रिटिश शासन ने कानून की दृष्टि से समानता का सिद्धांत प्रस्तुत किया, परंतु प्रशासनिक स्तर पर उच्च जातियों का प्रभुत्व बना रहा।
न्यायालयों और नौकरियों में उच्च जातियों का वर्चस्व,
शिक्षा के अवसरों में असमानता,
इस प्रकार औपनिवेशिक शासन ने आधुनिकता और समानता का वादा किया, परंतु व्यवहार में जातिगत विषमता बनी रही।

(ख) जनगणना और जातीय पहचान :
ब्रिटिश जनगणनाओं ने जातियों को वर्गीकृत कर स्थिर पहचान दी। इससे जातीय चेतना और संगठित प्रतिरोध को बल मिला।

* क्या यह आंदोलन ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध थे ?

निस्संदेह, प्रारंभिक चरण में आंदोलन का मुख्य लक्ष्य ब्राह्मणवादी सामाजिक वर्चस्व को चुनौती देना था।
धार्मिक ग्रंथों की आलोचना,
कर्मकांड और पुरोहितवाद का विरोध,

शूद्र-अतिशूद्र एकता,
फुले और उनके अनुयायियों ने स्पष्ट रूप से ब्राह्मणों के सामाजिक प्रभुत्व को अन्यायपूर्ण बताया।

* क्या यह औपनिवेशिक अंतर्विरोधों का परिणाम थे ?

यह भी उतना ही सत्य है कि दलित आंदोलन औपनिवेशिक आधुनिकता की उपज थे।
शिक्षा और मुद्रण प्रेस ने विचारों का प्रसार किया।
कानून और प्रतिनिधित्व की अवधारणा ने राजनीतिक चेतना जगाई।
आर्थिक परिवर्तन ने पारंपरिक संबंधों को तोड़ा,
औपनिवेशिक शासन ने एक ओर सामाजिक गतिशीलता के अवसर दिए, दूसरी ओर असमानता को भी बनाए रखा।
इसी अंतर्विरोध से आंदोलन को ऊर्जा मिली।

समन्वित दृष्टिकोण :

दलित आंदोलन को केवल ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध प्रतिक्रिया कहना अधूरा होगा और केवल औपनिवेशिक अंतर्विरोधों का परिणाम मानना भी एकांगी होगा।
वास्तव में यह आंदोलन—
पारंपरिक जाति-आधारित दमन के विरुद्ध प्रतिरोध था।
औपनिवेशिक आधुनिकता से प्रेरित आत्मसम्मान और अधिकार चेतना का परिणाम था।
सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन की संयुक्त अभिव्यक्ति था।

निष्कर्ष :

पश्चिमी भारत में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध का दलित आंदोलन भारतीय समाज के गहरे अंतर्विरोधों की अभिव्यक्ति था।
यह एक ओर ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना के विरुद्ध वैचारिक और सामाजिक विद्रोह था, तो दूसरी ओर औपनिवेशिक शासन द्वारा उत्पन्न आधुनिक शिक्षा, कानून और आर्थिक परिवर्तनों का परिणाम भी।
अतः यह कहा जा सकता है कि यह आंदोलन न तो केवल ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध थे और न ही मात्र औपनिवेशिक अंतर्विरोधों की उपज, बल्कि दोनों कारकों की परस्पर क्रिया का ऐतिहासिक परिणाम थे।